Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852; Impact Factor: RJIF 5.44
Received: 10-10-2020; Accepted: 25-10-2020; Published: 12-11-2020
Volume 1; Issue 2; 2020; Page No. 36-39

उपन्यास का अद्भूत चितेरा भैरव प्रसाद गुप्त

डॉ रंजना त्रिपाठी
श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

उपन्यास शब्द उप तथा न्यास दो शब्दों के योग से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर यह लगे कि यह हमारी ही है इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने में यह
शब्द सर्वथा समर्थ है।

उपन्यास वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। इस संबन्ध में प्रेमचन्द का कथन है– "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" [1]

न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहा गया है– वृहत आकार, गद्य आख्यान या वृत्तान्त जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है। [2]

सब परिभाषाएं एक ही बात पर जोर देती है कि उपन्यास में मानव जीवन का प्रतिनिधित्व हो, घटनाएं श्रृंखलाबद्ध हों, वास्तवविकता की सीमा में नियोजित कल्पना हो। उपन्यास की परिभाषा देना संभव नहीं परन्तु व्यापक दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि यह गद्य साहित्य का एक अन्यतम रूप है, जिसका आधार कथा है–

चाहे वह सीधे मनुष्यों की हो या मनुष्येतर जीव और निर्जीव प्रकृति की हो अथवा चाहे वह सच्ची हो या कल्पित। उसे उपस्थित करने में कल्पना का प्रयोग आवश्यक है। कौतूहल की सृष्टि तथा मानवीय मनोवेगों के उद्दीपन द्वारा उसमे रोचकता और किसी नीति या सिद्धान्त सम्बन्धी विचारों की उत्तेजना द्वारा उसमें गरिमा का समावेश वांछनीय है।

हिन्दी में उपन्यास साहित्य का आविर्भाव 19वीं शती के अन्तिम चरणम हुआ। हिन्दी उपन्यास के आविर्भाव के विकास मे दो मत है– पहला यह कि हिन्दी उपन्यास प्राचीन कथा–साहित्य की परम्परा का विकसित रूप है। इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यास परम्परा बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' भी परम्परा के अन्तर्गत मानी जाती है। दूसरा यह कि उपन्यास कला अन्य कलाओं की भाँति आधुनिक युग की देन है। इसके समर्थक विद्वान हिन्दी उपन्यास का सम्बन्ध प्राचीन कथा–परम्परा से कुछ नहीं मानते। इस मत को अधिक विद्वानों का समर्थन प्राप्त होने के कारण यह सर्वमान्य भी है।

हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव अति आधुनिक युग में हुआ, गद्य के विकास के साथ ही इसका भी बहुत कुछ विकास हुआ है। इस संबन्ध में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नए गद्य के प्रचार के साथ–साथ उपन्यास का प्रचार हुआ। आधुनिक उपन्यास केवल कथामात्र नहीं है, और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भाँति कथा–सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं रूपकों, दीपकों और श्लोकों की छटा और सरस पदों में गुम्फित पदावली की छटा दिखाने का कौशल नहीं है। यह आधुनिक वैयक्तिकतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है।" [3]

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है।

प्रथम पूर्व प्रेमचन्दयुग, द्वितीय प्रेमचन्द युग, तृतीय प्रेमचन्दोत्तर युग। पूर्व प्रेमचन्द युग को प्रारम्भिक युग कहा गया है। श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' 1877 ई० भारतीय नारियों के गृहस्थ धर्म की व्याख्या प्रस्तुत करता है।

इस उपन्यास ने जीवन की यथार्थ परिस्थितियां के आधार पर आदर्श की प्रतिष्ठा की है। यह प्रथम सफल औपन्यासिक रचना है।

फुल्लौरी जी की परम्परा को आगे बढ़ाने में लाल श्री निवासदास (परीक्षा गुरू 1882 ई०), किशोरी लाल गोस्वामी (त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी 1882 ई०) गोपालराम गहमरी (अद्भुत लाश 1896 ई०) देवकी नन्दन खत्री, लज्जाराम शर्मा, गंगा प्रसाद गुप्त, ब्रजनन्दन सहाय आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस युग में सामाजिक, तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक आदि सभी प्रकार के उपन्यासों की रचना हुई है।

प्रेमचन्द युग को 'प्रौढ़ युग' भी कहा गया है। इस युग का प्रर्वतन मुंशी प्रेमचन्द के 'सेवासदन' 1918ई० से होता है। यह नवीन परिस्थितियों के प्रभाव से पुराने आदर्शों एवं मूल्यों के नवीनता से संक्रमित होने का युग है। प्रेमचन्द जी का प्रादुर्भाव सम्पूर्ण युग बोध की तीव्र संवेदना लेकर साहित्य के रंगमंच पर हुआ।

अध्याय–3 हिन्दी उपन्यास और भैरव प्रसाद गुप्त 30

प्रेमचन्द के सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि में गाँधीवादी आदर्श–सत्य, अंहिसा, प्रेम लक्षित होता है तो गोदान, निर्मला आदि में समस्याओं का किया गया यथार्थ चित्रण से प्रमाणित होता है कि जीवन के अन्तिम चरण में प्रेमचन्द गाँधीवादी आदर्श से हटते प्रतीत होते हैं। गोदान प्रेमचन्द की चरम उपलब्धि है। प्रेमचन्द के साहित्यिक आदर्शों से प्रभावित होने वाले विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, श्रीनाथ सिंह, वृन्दावन लाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं।

प्रेमचन्द युगीन प्रवृत्तियाँ प्रेमचन्दोत्तर युग में विकसित हुईं। भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर ने प्रेमचन्द की परम्परा के युगानुकूल परिवर्तित करके उसे नवीनताके परिप्रेक्ष्य में सन्दर्भित करने का प्रयास किया है।

भगवती चरण वर्मा ने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर मौलिक ढंग से विचार किया है। पतन, चित्रलेखा तीन वर्ष, टेढ़े–मेढ़े रास्ते, आखिरी दाँव, भूले–बिसरे चित्र आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अश्क जी की रचनाओं में यथार्थ का वह आलोचनात्मक रूप मिलता है जो प्रेमचन्द के गोदान की विशेषता है।

अमृतलाल नागर ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण तटस्थ दृष्टि से किया है। 'बूँद और समुद्र' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। नागर जी ने इसमें विश्वास, आस्था और सहानुभूति को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में गाँधीवादी विचारधारा के अतिरिक्त मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर भी रचनाएं की गयी है। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे इस परिवर्तित दृष्टिकोण को लेकर उतरने वालों में यशपालजी सर्वप्रमुख उपन्यासकार है। दादा कामरेड देश द्रोही, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप, झूठा–सच आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं जिसमे समाज तथा जीवन की विविध आयामी समस्याएं चित्रित हैं।

साम्यवादी उपन्यासकारों की परम्परा में रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त आदि प्रमुख हैं। रांगेय राघव ने 'विषाद मठ', 'उबाल', 'पराया हुजूर' नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध' 'बाबा बटेश्वरनाथ' 'दुखमोचन' 'वरूण के बेटे', 'अमृतराय ने 'बीज', 'हाथी के दाँत' 'नागफनी का देश' भैरव प्रसाद गुप्त ने 'मशाल', 'गंगा मैया', 'जंजीर' 'नया आदमी' 'सती मैया का चौरा' के माध्यम से साम्यवादी औपन्यासिक परम्परा का विकास किया है। ये सभी उपन्यास चित्रण की यथार्थवादिता की दृष्टि से यथार्थपरक सामाजिक उपन्यासों के निकट पड़ते हैं।

इस परम्परा के उपन्यासकारों ने सामाजिक क्रांति के व्यापक लक्ष्य को अपने सम्मुख रखा और समस्याओं का चित्रण यथार्थपरक शैली में किया।

हिन्दी कथा साहित्य में मार्क्सवादी समाजशास्त्र के आधार पर वर्ग–संघर्ष के विकास तथा समाजवाद के वैज्ञानिक आधारों को मजबूत करने का प्रयास हुआ है।

नागार्जुन, यशपाल, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, ज्ञान रंजन और काशीनाथ तक एक लम्बी कतार मिलती है। इन सभी उपन्यासकारों ने सामंतवादी– पूँजीवादी–व्यक्तिवाद और उसके सभी बीमार मंसूबों की आलोचना की है। ये सभी प्रतिबद्ध हैं। इसके पास विकल्प हैं। ये सभी समाजवादी –जनवाद की विचारधारा से जनता की सामूहिक और संगठित चेतना को सोद्देश्य संघर्ष तक आगे बढ़ाने में सक्षम हैं। इन्हें अपनी रचनाओं में सफलता मिलती है। ये अनुचित तथा जनविरोधी विचारों के बिल्कुल प्रतिकूल है। इन्हों ने परिवेश की समग्रता में कथा सन्दर्भों और कथा पात्रों की रचना की है। इनकी रचनाओं में पूर्व कल्पनाओं और अनुमानों का उतना आभास नहीं है। इनमें जीवन की प्रत्यक्षता और स्पष्टता है समग्रता के भीतर जन्म लेने वाली संभावनायें अप्रत्यक्ष और एकाकी नहीं होती और खण्डों में विभक्त और बेमेल जीवन में खोजी जाने वाली संभावनायें स्पष्ट और पायेदार नहीं हो सकतीं। गतिमान मूर्तिमत्ता के लिए अन्तविरोधों से गुजरती हुई तथा सब कुछ को अपने भीतर समेटती हुई दृष्टि आवश्यक होती है। इसके लिए यथार्थवादी दृष्टि एवं परिप्रेक्ष्य जरूरी होता है और ऐसी दृष्टि परिप्रेक्ष्य अर्जित की जाती है। दृष्टि परिप्रेक्ष्य के सहारे रचना की संगति नहीं टूटने पाती, वह किसी भी स्तर और स्थल पर सुस्त नहीं हो पाती।

सामूहिक चेतना के द्वन्द्वपूर्ण विकास में प्राथमिकता किन समस्याओं और प्रश्नों को दी जाए? तथा वाम संस्कृति को इस नये ऐतिहासिक, सामाजिक परिर्वतन के दौर में किस तरह विश्लेषित किया जाए? उसमें जनता की भागीदारी को कैसे बढ़ाया जाए? इन तमाम प्रश्नों और समस्याओं को प्रगतिशील जनवादी रचनाकार ने अधिक वस्तुपरक ढंग से समझा है। इनकी रचनाओं में संघर्ष की यथार्थवादी झलक स्पष्ट है। लोक संघर्ष और संयुक्त मोर्चे की रणनीति रचनात्मक है। इनके वस्तु संदर्भ प्रखर हैं जिनमें समाजवादी मानवतावादी मानववाद की उत्कृष्टताओं को लक्ष्य किया गया है। इन कथाकारों ने वर्ग संघर्ष की बुनियादी अवधारणाओं को सही और वास्तविक परिप्रेक्ष्य देकर जनता की आदतों मे तथा उसके व्यवहार में उतारने का श्रम किया है। आज के वामलेखन में भाववादी आक्रोश और नारेबाजी, मुहावरेबाजी नहीं है। आज के हिन्दी उपन्यास साहित्य में सामाजिक यथार्थ की सही अभिव्यक्ति हो सकी है।

भैरव प्रसाद गुप्त वामपंथी बुद्धिजीवी और जनवादी उपन्यासकार हैं। लगभग पाँच, (चार) दशकों तक लेखन क्षेत्र में सक्रिय रहे। प्रेमचन्द और यशपाल की लोकबद्ध समाजवादी वामदृष्टि को भैरव गुप्त जी ने अपने समकालीन जीवन के अनुरूप आगे बढ़ाया है।

स्वतन्त्रता के बाद मृतप्राय सामन्तवादी व्यवस्था और नई पूंजीवादी व्यवस्था का द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से जितना सही और सूक्ष्म चित्रण तथा संघर्ष के क्रम में बदलने वाली परिस्थितियों का विश्लेषण, भैरव प्रसाद गुप्त ने किया है वैसा हिन्दी के अन्य कोई जनवादी उपन्यासकार नहीं कर सके हैं। वे अंधेरे के विरूद्व रोशनी की लड़ाई के कथाकार हैं। हिन्दी के जनवादी कथा साहित्य में भैरव प्रसाद गुप्त एक दिशा निर्देशक और दिशा चालक की तरह अग्रिम पंक्ति में खड़े हैं। [4]

भैरव प्रसाद गुप्त 'सर्वहारा' को 'आम–आदमी' के अमूर्त संज्ञान में ले जाने वालों का विरोध करते हैं। सर्वहारा बोध अपनी विशिष्ट भौतिक, सामाजिक परिस्थितियों से निर्मित तथा एक निश्चित उद्देश्य की ओर आगे बढ़ने वाली वर्ग चेतना है जिसका गैरजनवादी उसूलों से मेल नहीं हो सकता। सर्वहारा बोध तो इतिहास और समकालीन समाज से उत्पन्न ऐसी यथार्थशक्ति है जो नये उत्पादन संबन्धों के अनुरूप समूची अधिरचना को बदलने के निमित्त प्रतिबद्ध है। सर्वहारा बोध हमारे विज्ञान युग के समाज की रचनात्मक जनशक्ति है जो पराजित नहीं होती। 'आम आदमी' तो सब मिलाकर पूँजीवादी समाज का उच्छिष्ट है। वह भीड़ के अजनबीपन की इकाई है।

जबकि सर्वहारा एक अनुशासित विचारधारा का मानवीय संज्ञान है, जो समूचे समाज को नैतिक बनने और बनाने के लिए निरन्तर संघर्ष करता है।

इस प्रकार समान व्यक्ति और उसका भ्रमपूर्ण अपरिभाषायें परिवेश आम आदमी के मूल में है। प्रगतिशील जनवादी धारणा को इस आम आदमी ने नकार दिया है। आम आदमी के निकट ही सभी मानव विरोधी साजिश मिलती है जो राजनीतिक उदासीनता, सामाजिक तटस्थता और यथास्थिति के भाग्यवादी स्वीकार के साथ प्रदर्शनप्रियता के खोखलेपन को बढ़ावा देती है। छद्म रूप में मनुष्य का कृत्रिम आकर्षण बढ़ने लगता है। मनुष्य के इस छद्म रूप को कथाकार कमलेश्वर के कथा साहित्य में पढ़ा जा सकता है। इस आम आदमी के रूप में एक तरफ आत्मविलगाव को रचा गया है तो दूसरी तरफ नये प्रकार के बड़बोलेपन की कला को प्रस्तुत किया गया है। इस 'आम –आदमी' ने हिन्दी कथा के चरित्र को कथावाचकीय बना दिया है।

भैरव प्रसाद गुप्त सर्वहारा बोध के उपन्यासकार है। इनके उपन्यास मे वर्गवादी विचारधारा के संघर्ष की व्यावहारिक दशाओं का चित्रण हुआ है। वर्गविभक्त समाज के बाहरी और भीतरी प्रतिरूप और विरोधों की स्पष्ट समझ के आधार को भैरव प्रसाद ने आने वाले समय की प्रतिबद्धता को गहरे विश्वास के साथ प्रकट किया है। इतिहास और समकालीन बोध की एकनिष्ट निरन्तरता में ही आगत परिस्थितियों की विश्वसनीय अवधारणा बनायी जा सकती है, संभावनाओं को खोजा जा सकता है। नतीजों पर पहुँचते हुए भैरव प्रसाद ने ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद के नियमों का अनुमोदन किया है।

पूँजीवादी की व्यक्तिगत चेतना के विरूद्ध सर्वहारा की साम्यवादी चेतना के जागरण का मूल मंत्र स्वयम् मजदूर वर्ग के अन्तस से जागृत होती है। मजदूरों के परिवेश से यह चेतना जागृत होगी। इसे अभिप्रेरणा प्रदान करने के लिए साम्यवादी दल अथवा कम्युनिष्ट पार्टी अपनी असाधारण भूमिका का निर्वहन करेगी।

मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त की अनुगूंज भैरव प्रसाद गुप्त के कथा साहित्य में यत्र तत्र देखा जा सकता है। परन्तु इस क्रम में न तो कथा की तारतम्यता में व्यवधान आया है और न भाषा के आन्तरिक प्रवाह में। इस स्थल पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय मार्क्सवादी सिद्धान्त को समाहित करने के उपरान्त भी शिल्प की रोचकता शत प्रतिशत सुरक्षित है। मजदूर चेतना के विनिर्माण के सन्दर्भ में भैरव प्रसाद गुप्त के प्रसिद्ध ''मशाल'' का पात्र ''शकूर'' का कथन दृष्टव्य

है। 'किस्मत और खुदा के नाम पर रोना उसने बन्द कर दिया है। अपनी पार्टी, अपने आन्दोलन और अपने साथी मजदूरों की शक्ति में उसमें इतना विश्वास हो गया कि दूसरी शक्ति की ओर आँख उठाने की उसे जरूरत ही नहीं रह गयी। अब उसे अपने काम से मुहब्बत हो गयी, क्यांकि वह समझन लगा है कि उसके काम का क्या महत्व है। उसके काम से दुनिया के मजदूर आन्दोलन को गव्यात्मक ऊर्जा मिलती है। जिसके साथ से दुनिया के मजदूर आन्दोलन को कामयाबी मिलती है, जो दुनिया के इन्सानों की तरक्की, ,खुशहाली और जनवाद का ऐतिहासिक दस्तावेज है। [5]

इसी भूमिका पर उनकी जनवादी प्रतिबद्धता का सम्बोधन स्पष्ट हो जाता है।

वे कहते है– "प्रतिबद्धता की धारणा मूलतः बुर्जुआ व्यक्तिवादी चिन्तन के खिलाफ जनता की जनवादी चेतना को लगातार विकसित करते हुए उसे जनवादी और समाजवादी क्रांति के उपयुक्त बनाने के सामाजिक चिन्तन की अवधारणा है। [6]

इस प्रकार जनता की चेतना का जनवादी चेतना के स्तर तक पहुँच जाना ही वह गुणात्मक परिवर्तन है जिसमें सामन्ती, पूँजीवादी विरोध की लड़ाई पूरी ताकत से लड़ी जा सकती है।"

भैरव प्रसाद गुप्त के उपयान्स के तीन केन्द्रीय सूत्र है

प्रथम– सामंतवादी और पूंजीवादी व्यवस्था में पाये जाने वाले अन्तर्विरोध पूर्ण अवास्तविक रिश्ते जो गैर–मानवीय आचरण करने को बाध्य करत हैं। इनके कारण।

द्वितीय–समाज के जीवन में विसंगति, विद्रूप, अश्लीलता पर निर्भरता अनिवार्य सी हो जाती है और मनुष्य हीन हो जाता है।

तृतीय– मनुष्य की हीन अवस्थाओं से मुक्ति के लिए, मन ुष्य और मनुष्यता को स्वतन्त्र करने के लिए समाजवाादी–विचार के प्रति सक्रिय सम्बद्धता और प्रतिबद्धता जरूरी है।

भैरव प्रसाद गुप्त अपने उपन्यास साहित्य में समकालीन भारतीय जीवन को उसकी विशिष्ट–ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भूमिका में प्रतिपादित किया है और जनता के जनवादी राजनीतिक संस्कारों को रचने का प्रयत्न किया है। गुप्त जी के उपन्यास में प्रजातंत्र की क्रान्तिकारी चेतना व्याप्त हैं

गुप्त जी ने पहले क्रान्तिकारी मूल्यों की पहचान कराई उसके बाद ही इन्कलाब को आगे बढ़ाया।

भैरव प्रसाद के उपन्यास, सामाजिक विसंगतियों, क्रान्तिकारी मूल्यों की प्रतीति कराते हैं। भैरव प्रसाद के सम्प ूर्ण कथा वाङ्मय में वर्ग वैषम्य को गहरे रूप से रेखांकित किया गया है। भैरव प्रसाद के उपन्यास सर्वहारा आन्दोलन की राजनीतिक चेतना का सूत्र पात करते हैं जिसकी मूल आत्मा लोकतांत्रिक हैं इसे इनके उपन्यास मशाल में देखा जा सकता हैं ''परेड के दोनो तरफ की गलियाँ मजदूरों से भरी हुई थीं।'' सहसा नारे का शोर सुनाई दिया। जार्ज मऊ के एक हजार लड़ाकू चमड़ा मजदूरों के जुलूस ने परेड के पास पहुंचकर नारा दिया, कम्युनिष्ट पार्टी जिन्दाबाद!6

जिन्दाबाद के नारे से सारी गलियां गू ंज उठी। और हर ओर से दौड़त हुए मजदूरों के जत्थे मैदान में जैसे जादू की तरह प्रगट होकर नारों से आसमान गुंजाने लगे। ''दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ, तुम्हें खोने के लिए केवल बेढि ियाँ और पाने के लिए पूरा संसार।''

हजारों मजद ूरों ने एक सौ चौआलीस और पुलिस के आतंक को पैरों से रौंदकर अपनी ताकत के खून से परेड के मैदान पर उस दिन मजदूर सभा के इतिहास का एक शानदार इतिहास लिख कर रख दिया कि कामरेड युसूफ की बात कितनी सच थी।

नारे गूंजत रहे। शाम झुक कर अपन बहादुर बेटों को एक टक ताकती रही।

पेड़ झूमते रहे। पंछियों के गोल खुशी में आंखे नचाते रहे। मजदूरों की अनगिनत आंखे मुस्कुरा रहीं थी। [7]

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'मशाल' में मजदूरों के स ंघर्ष का, 'बांदी' में सांमती शोषण की क्रूरता और अमानवीयता का, 'गंगा मैया' में सामन्ती शोषण के विरूद्ध छोटे किसान के संघर्ष का, 'धरती' में राष्ट्रीय आन्दोलन की लोक च ेतना और अंग्रेजी शोषण के विरूद्ध भारतीय प्रतिक्रिया का, 'रम्भा' में सर्वोदयी भाव के निकम्मेपन और पिछड़ेपन का, 'नौजवान' में एक ग्रामीण छात्र के राष्ट्रीय और सामाजिक आन्दोलनों में शरीक होन तथा प्रतिश्रुत होने की सम्भावनाओ का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'सती मैया का चौरा' तो जैसे बीसवीं सदी के हिन्दुस्तान की यथार्थवादी संघर्षशील चेतना के बदलते हुए और अन्त होते हुए रूपों की महाकथा है।

शोले गुप्त जी का प्रथम उपन्यास हैं इस उपन्यास में स्त्री (शोभा) और पुरुष (बरन) की प्रेमकथा अंकित है। उनका प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ है। पर समाज उनके संबन्धों में बाधक है। समाज में सामन्तवादी व्यवस्था व्याप्त है इसलिए सामन्तवादी व्यवस्था म जिस प्रकार के मानवीय संबन्ध हो सकते हैं उनका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

उपन्यास में वरन और शोभा का प्रेम वर्गगत चरित्र न होकर सामान्य पुरुष और सामान्य नारी के प्रतिनिधि चरित्र हैं। लेखक का विशेष ध्यान और सहानुभूति स्त्री (शोभा) चरित्र के न्याय की ओर है। इसमें लेखक का उद्देश्य सामन्तवादी व्यवस्था व सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ना है। यदि भाषा, शैली व शिल्प की दृष्टि से शोले को द खा जाय तो इसमें बहुत सी कमजोरियाँ नजर आती हैं। इसी से इसे उपन्यास न कहकर मात्र औपन्यासिक प्रयास कहा गया है। उपन्यास की भाषा सरल और सीधी–साधी है और जहां तक शिल्प का प्रश्न है उसमें कोई नवीनता नहीं है। शोले उपन्यास की सफलता उपन्यास की वस्तु में निहित है। स्त्री पुरुष का ऐसा सम्बन्ध है जिस पर साहित्य के आरम्भ से लिखा जाता रहा हैं और साहित्य के अंत तक लिखा जाता रहेगा।

लेकिन स्त्री पुरूष सम्बन्ध चित्रण में भैरव प्रसाद गुप्त की दृष्टि स्वस्थ है। यह दृष्टि मार्क्सवादी नहीं है। सहज मानवीय दृष्टि है। लेकिन सहज भाव से ही शोले में मार्क्सवाद परिलक्षित हो उठता हैं शोले उपन्यास लेखक की मात्र बीस वर्ष की अवस्था में लिखा जाने वाला प्रथम प्रयास है जो कुछ हद तक सफल भी है और उनके अगले उपन्यासों की आधार शिला बना है यह प्रयास लेखक को उपन्यास क्षेत्र का सम्राट बनाने में सफल सिद्ध हुआ। वे कहते हैं, ''1946 ई० में मैंने अपना पहला उपन्यास शोले लिखा और राजेश्वर बाबू के कहने से वह 'मनोहर कहानियाँ' में धारावाहिक रूप में छपने लगा। छः महीन यह उपन्यास चला और मनोहर कहानियाँ का सर्कुलेशन दुगुना हो गया। उपन्यास की आखिरी किस्त छपने के बाद पाठकों के सैकड़ों पत्र आये। पुस्तक के रूप में इसकी दो हजार से अधिक प्रतियों के अग्रिम व्यक्तिगत आर्डर भी आ गय। इससे उपन्यास के क्षेत्र में मेरा हौसला बढ़ गया।'' [8]

शोले उपन्यास को जो एकदम लोकप्रियता प्राप्त हुई उससे लेखक का उत्साह व आत्मविश्वास बढ़ गया और उसने उपन्यास लेखन में अन्य कई प्रयोग किए।

कानपुर में हमें जल्द ही सेन्ट्रल आर्डिनेन्स डिपो में काम मिल गया। वहां जे० के० आयरन मिल में हमारे गांव के कई मजदूर और मिस्त्री काम करत थे वे सब ड्य ूटी के पड़ाव पर एक स्लम म रहत थे। उनके यहां म रा आना जाना शुरू हुआ और पहली बार मुझे मजदूरों का जीवन, उनका संघर्ष देखने का अवसर मिला। कामरेड युसुफ और बहुत सारे कम्युनिस्ट नेता उस समय जेल में थे। उन्हीं को छुड़ाने का संघर्ष चल रहा था। उन्हीं अनुभवों के आधार पर मैंने 1948 में अपना दूसरा उपन्यास ''मशाल'' लिखा था। उसके पहले 1946 में मेरा पहला उपन्यास ''शोले'' छपा था, जो बहुत लोकप्रिय हुआ था और उसमें मेरा

विश्वास हो गया था कि मैं उपन्यास भी लिख सकता हूँ। लेकिन यह बाद की बाते ं है ं, जब मै ं माया सम्पादन विभाग में काम करने आ गया था। [9]

मशाल भैरव प्रसाद गुप्त प्रेमचन्द परम्परा के अग्रणी उपन्यासकार है ं। भैरव प्रसाद गुप्त ने ग्रामीण भूमि व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के साथ–साथ ग्रामीण जीवन में उत्पन्न होने वाले परिर्वतनों को अपने उपन्यासों का कार्य विषय बनाया।

प्रेमचन्द का होरी सामन्ती आस्था विश्वासों में सूदखोरों, पुलिस, दलालों, जमींदारों और कुलीनों के शोषण चक्र म ें दम तोड़ देता हैं गोदान में होरी की मौत नहीं आम किसानों की मौत है। नार्गाजुन ने होरी को बलचनमा के रूप में पुनर्जीवित किया जो अब किसी बन्धन को नहीं मानता तथा शोषक वर्ग के विरूद्ध भूमिहीन किसानों को एकत्रित करके संघर्ष करता है। भैरव जी ने इससे भी आगे के मजदूर संघर्ष को मशाल में चित्रित किया है। जिसमें सन् 1936 का गोबर 1951 में नरेन बन जाता है। नर ेन मशाल उपन्यास का मुख्य पात्र है जिसे न म हता की आवश्यकता है न मालती की। वह स्वयं के लिए संघर्ष नहीं करता अपितु अपने वर्ग–हित के लिए संघर्ष करता है। नरेन की हीन भावना को मार्क्स–लेनिन के सिद्धान्त, आत्मविश्वास और आत्म गौरव से भर देते हैं। भैरव प्रसाद के उपन्यास 'गंगा मैया' का मटरू होरी की तीसरी पीढ़ी है। बलचनमा की मृत्यु से वह और अधिक सतर्क होकर जमींदारों को खुली चुनौती देता है तथा वर्गीय संघर्ष का नेतृत्व करता है। गुप्त जी का मार्क्सवाद बृद्धि–विलासी राजनीतिज्ञों का चाय की प्याली पर चलन वाला और मनोर जन करान वाला वर्ग संघर्ष नहीं हैं। गुप्त जी ने भारतीय किसान की अभावो ं मे ं तड़पती, सिसकती और कराहती आत्माओं से साक्षात्कार किया है। उनकी वेदनाओं को आत्मसात करके गुप्त जी न शोषक वर्ग के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। वे तपती दुपहरी में खेतों और खलिहानों में नंगे बदन घोर परिश्रम किये हैं।

शोषक की चक्की में पिसे हैं। स्वयं किसान मजदूरों का संगठन किया है। मजदूर यूनियन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हड़ताल कराई है और जेल गये हैं।

पुलिस के डण्डे खाये हैं। गुप्त जी के उपन्यासों के पात्र नरेन (मशाल) मटरू (गंगा मैया) चत ुरी (जंजीरें और नया आदमी) और मन्न तोता मैना की कहानी के पात्र न होकर स्वयं भैरव जी के प्रतिरूप हैं, भैरव जी का व्यक्तित्व, सिद्धान्त, एवं उनकी सांगठनिक समझ उनके पात्रों में प्रतिबिम्बित है। सच्चे अर्थों में भैरव जी लोक कल्याण की भावना से ओत प्रोत एक समर्थ कलाकार हैं।

भैरव जी का हर साहित्य सोद्देश्य होता है। उनके जीवन की तरह उनका सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य शोषितों तथा सामाजिक अन्यायों से पीड़ित जन समुदाय के प्रति समर्पित है। सामाजिक और राजनीतिक चेतना से लैस उनकी पारदर्शी तथा वस्तुपरक दृष्टि कितनी गहरी है इसका पता उनके उपन्यासों के अध्ययन से चलता है।

'मशाल' भैरव प्रसाद गुप्त का पहला प्रगतिशील लेखन परम्परा का उपन्यास है। जिसमें सर्वहारा के वर्गीय स घर्ष को प्रथम बार साम्यवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्णता के साथ चित्रित किया गया है। इस वर्गीय चेतना को सन् 1938 से 1947 तक के अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय क्षितिज पर होने वाली राजनीतिक उथल पुथल तथा अनेक परिवर्तनों से सम्बल प्राप्त होता है जिनका चित्रण उपन्यास म ें प्रासंगिक रूप से उठाया गया है।

मशाल की कथावस्त ु सन ् 42 के राष्ट्रीय आन्दोलन और द्वितीय विश्व युद्ध पर आधारित है। एक ओर अपने देशहित के लिए भारतीय जनता अंग्रेजों से संघर्ष करती है और सफलता और असफलता प्राप्त करती है। अलीम के अनुसार ''अब हम आजाद हैं, अम्मा! हमने गुलामी के एक–एक गढ़ को तोड़ दिया अब्बा! जुल्मों के अड्डों, थानों चौकियों और कचहरियों को शोलों में खड़े–खड़ े जलाकर हमेशा के लिए उनका नामो निशान मिटा दिया। जेल के खूनी फाटकों को तोड़ दिया। अंग्रेजी हुकुमत के एक–एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब हम आजाद हैं,'' [10] अलीम का यह कथन बलिया पर जनता के राज्य की पुष्टि करता है। पर 42 के इस आन्दोलन में असफलता ही हाथ लगी। अलीम का गोली मार देना, उसके माँ–बाप को पेड़ से बाँध कर कोड़े लगाना, सकीना के साथ गोरों द्वारा सामूहिक बलात्कार तथा आगजनी आदि का वर्णन मन्मथनाथ गुप्त ने भी अपने राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में किया है।

अध्याय–3 हिन्दी उपन्यास और भैरव प्रसाद गुप्त 61

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1–सम्पादक : धीरेन्द्र वर्मा, उपन्यास, पृष्ठ स ख्या –154।
2. हिन्दी साहित्य कोश–सम्पादक : धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ संख्या 154–155।
3. हिन्दी साहित्यः उद भव और विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या –218।
4. भैरव प्रसाद गुप्तः व्यक्ति और रचनाकार : राजेश सक्सेना पृ० संख्या–77
5. मशाल –भैरव प्रसाद गुप्त, पृष्ठ संख्या 133 नीलाभ प्रकाशन,गृह खुसरो बाग रोड़, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1957)
6. भैरव प्रसाद गुप्त : व्यक्ति और रचनाकार राजेश्वर सक्सेना, पृष्ठ संख्या –78
7. मशाल भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० संख्या 220–222 नीलाभ प्रकाशन गृह,, 5 खुसरो बाग रोड इलाहाबाद।
8. मेरी साहित्य यात्रा–भैरव प्रसाद गुप्त पृ० संख्या 24
9. मेरी साहित्यिक यात्रा भैरव प्रसाद गुप्त, ''लेखन'' पत्रिका भैरव प्रसाद गुप्त व्यक्ति और रचनाकार, भैरव प्रसाद गुप्त के 67वें जन्म दिवस पर जुलाई 1984 सम्पादक विद्याधर शुक्ल प्रकाशक : श्रीमती प्रभा शुक्ल, 72 पूरा जल्दी कीडगंज इलाहाबाद।
10. मशाल भैरव प्रसाद गुप्त पृ० संख्या 69